eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 02, February 2025

आर्थिक वैश्वीकरण और राज्य की संप्रभुता पर प्रभाव

डा0 सदगुरु पुष्पम[1]

[1]एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग, के0 एस0 साकेत पीजी कालेज, अयोध्या, उ0प्र0, भारत

Received: 15 Feb 2025, Accepted & Reviewed: 25 Feb 2025, Published: 28 Feb 2025

Abstract

आर्थिक वैश्वीकरण 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तेजी से उभरने वाली एक वैश्विक प्रवृत्ति रही है, जिसने राष्ट्र–राज्यों की पारंपरिक संप्रभुता को गहरे स्तर पर प्रभावित किया है। पूंजी, श्रम, वस्तुओं, सेवाओं और सूचनाओं के निर्बाध अंतरराष्ट्रीय प्रवाह ने राष्ट्रीय सीमाओं की प्रासंगिकता को चुनौती दी है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों, और वैश्विक व्यापारिक समझौतों की भूमिका में वृद्धि ने नीति–निर्माण की प्रक्रिया में राज्य की भूमिका को सीमित कर दिया है। विशेषकर विकासशील देशों के संदर्भ में यह प्रभाव और भी स्पष्ट दिखाई देता है, जहाँ राष्ट्रीय आर्थिक निर्णय अंतर्राष्ट्रीय दबावों और शर्तों के अधीन होते हैं।

यह शोध–पत्र वैश्वीकरण की प्रक्रिया और उसके विविध आयामों का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करता है कि आर्थिक वैश्वीकरण ने राज्य की आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संप्रभुता पर किस प्रकार प्रभाव डाला है। साथ ही, यह अध्ययन उन संभावनाओं और रणनीतियों की भी खोज करता है, जिनके माध्यम से राष्ट्र अपनी संप्रभुता को सुरक्षित रखते हुए वैश्वीकरण के लाभों का समुचित उपयोग कर सकते हैं।

मुख्य शब्द – आर्थिक वैश्वीकरण, राज्य की संप्रभुता, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, वैश्विक शासन, विकासशील देश, सांस्कृतिक प्रभाव, आर्थिक निर्भरता।

Introduction

वैश्वीकरण आज के समय की एक प्रमुख और जटिल प्रक्रिया है, जिसने न केवल देशों के बीच आर्थिक लेन–देन को बढ़ाया है, बल्कि राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संरचनाओं को भी प्रभावित किया है। विशेष रूप से आर्थिक वैश्वीकरण, जिसमें वस्तुओं, सेवाओं, पूंजी, तकनीक और श्रमिकों का सीमाओं के पार प्रवाह शामिल है, ने पारंपरिक राज्य–संस्थाओं की संप्रभुता को नई चुनौतियों के समक्ष ला खड़ा किया है। राज्य की संप्रभुता का तात्पर्य उसकी नीति निर्माण, शासन और कानूनी स्वायत्तता से है, जो किसी बाह्य शक्ति के हस्तक्षेप के बिना कार्यान्वित की जाती है। परंतु आर्थिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया में अंतरराष्ट्रीय संगठनों (जैसे WTO, IMF, और विश्व बैंक), बहुराष्ट्रीय कंपनियों और अंतरराष्ट्रीय निवेशकों की भूमिका इतनी सशक्त हो गई है कि अब अनेक देशों की नीतियाँ इन बाहरी ताकतों के प्रभाव में बनने लगी हैं।

इस संदर्भ में यह शोध अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है, क्योंकि यह समझना आवश्यक है कि किस प्रकार वैश्विक आर्थिक प्रक्रियाएँ एक संप्रभु राष्ट्र की स्वायत्त निर्णय–क्षमता को प्रभावित कर रही हैं। यह प्रश्न विशेष रूप से विकासशील देशों, जैसे भारत, के लिए गंभीर है, जहाँ एक ओर वैश्वीकरण ने निवेश,

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 02, February 2025

तकनीक और व्यापार के नए अवसर खोले हैं, वहीं दूसरी ओर इससे आर्थिक असमानता, नीतिगत निर्भरता, और सांस्कृतिक समरूपता की चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं।

यह शोध–पत्र निम्नलिखित प्रमुख प्रश्नों पर केंद्रित है–

आर्थिक वैश्वीकरण की प्रकृति और विकास कैसे हुआ?

राज्य की संप्रभुता की पारंपरिक अवधारणा क्या है और उसमें क्या परिवर्तन आया है?

वैश्वीकरण ने राज्य की नीति–निर्माण प्रक्रिया को किस प्रकार प्रभावित किया है?

भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों में इसके क्या सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रभाव हुए हैं?

क्या राज्य वैश्वीकरण के दबाव के बावजूद अपनी संप्रभुता की रक्षा कर सकते हैं?

इन प्रश्नों के उत्तर तलाशने के उद्देश्य से यह शोध–पत्र वैश्वीकरण के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पहलुओं का गहन विश्लेषण करता है।

परिकल्पना– इस शोध–पत्र की आधारभूत परिकल्पना यह है कि–

आर्थिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने आधुनिक राष्ट्र–राज्यों की पारंपरिक संप्रभुता को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सीमित किया है, विशेषकर विकासशील देशों में जहाँ वैश्विक आर्थिक संस्थानों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों, और अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक समझौतों की भूमिका ने नीति–निर्माण की स्वतंत्रता को प्रभावित किया है।

वैश्विक पूंजी और निवेश की निर्भरता ने राज्यों की आंतरिक आर्थिक नीतियों को प्रभावित किया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते प्रभाव के कारण राज्य के नीति निर्धारण की स्वतंत्रता में कमी आई है। अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएँ (जैसे IMF, WTO, विश्व बैंक) विकासशील देशों पर आर्थिक नीतियों के संदर्भ में प्रत्यक्ष या परोक्ष दबाव डालती हैं। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप राज्यों की सांस्कृतिक और सामाजिक संरचनाओं में भी बाहरी हस्तक्षेप बढ़ा है, जिससे सांस्कृतिक संप्रभुता पर प्रभाव पड़ा है। राज्य संप्रभुता की पुनर्संरचना की प्रक्रिया में हैं, जिसमें वे वैश्विक व्यवस्था का भाग बनने के लिए कुछ अधिकारों का त्याग कर रहे हैं।

इन परिकल्पनाओं की पुष्टि या खंडन हेतु यह शोध–पत्र ऐतिहासिक उदाहरणों, समकालीन घटनाओं, भारत सहित विभिन्न देशों के नीतिगत परिवर्तनों तथा वैश्विक संस्थानों की भूमिका का विश्लेषण करेगा।

शोध प्राविधि– इस शोध में वर्णनात्मक (descriptive) एवं विश्लेषणात्मक (nalytical) शोध पद्धतियों का प्रयोग किया गया है, जो विषय की गहराई से समझ विकसित करने के लिए उपयुक्त मानी जाती हैं। शोध का उद्देश्य आर्थिक वैश्वीकरण के विविध पहलुओं का विश्लेषण करना तथा यह समझना है कि इस प्रक्रिया ने किस प्रकार राज्य की पारंपरिक संप्रभुता को प्रभावित किया है।

1. **शोध का स्वरूप** (Nature of the Research)– यह शोध गुणात्मक (Qualitative) प्रकृति का है। इसमें सांख्यिकीय विश्लेषण के स्थान पर विचारों, अवधारणाओं, नीतियों और संस्थागत प्रभावों के तुलनात्मक व विवेचनात्मक अध्ययन पर बल दिया गया है।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 02, February 2025

2. **डेटा के स्रोत** (Sources of Data)– शोध में द्वितीयक स्रोतों (Secondary Sources) का प्रमुखता से उपयोग किया गया है, जिनमें शामिल हैं– शैक्षणिक पुस्तकें और शोध–पत्र (Academic Books and Journals), अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं की रिपोर्टें (जैसे WTO, IMF, World Bank), सरकारी दस्तावेज और नीतिगत घोषणाएँ अखबारों और पत्रिकाओं के आलेख, ऑनलाइन शोध सामग्री एवं विश्वसनीय वेबसाइटों से संकलित जानकारी आदि।

3. **अध्ययन की सीमा** (Scope of the Study)– यह अध्ययन विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देशों के परिप्रेक्ष्य में किया गया है, परंतु वैश्विक दृष्टिकोण को भी ध्यान में रखते हुए तुलनात्मक संदर्भों को शामिल किया गया है।

4. **अध्ययन की सीमाएँ** (Limitations of the Study)– प्राथमिक डेटा का अभावरू यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। वैश्वीकरण की प्रकृति निरंतर परिवर्तित होती रहती है, जिससे कुछ निष्कर्ष समय के साथ अप्रासंगिक हो सकते हैं। विभिन्न देशों की राजनीतिक–आर्थिक स्थितियाँ भिन्न होने के कारण सार्वभौमिक निष्कर्ष निकालना कठिन हो सकता है।

5. **विश्लेषण की प्रविधि** (Method of Analysis)– एकत्रित जानकारी का सामग्री विश्लेषण (Content Analysis) तथा तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Study) के माध्यम से गहन मूल्यांकन किया गया है, जिससे आर्थिक वैश्वीकरण और राज्य की संप्रभुता के बीच संबंधों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जा सके।

आर्थिक वैश्वीकरण की परिभाषा और विकास– आर्थिक वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत विश्व की अर्थव्यवस्थाएँ, बाजार, उत्पादन प्रणालियाँ, और पूंजी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आपस में एकीकृत होती जा रही हैं। इसमें वस्तुओं, सेवाओं, पूंजी, श्रम और प्रौद्योगिकी का देशों के बीच तीव्र और मुक्त प्रवाह शामिल है। सरल शब्दों में, यह वह प्रक्रिया है जिससे स्थानीय और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएँ वैश्विक बाजार की व्यापक प्रणाली में समाहित होती हैं।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) के अनुसार–

"Economic globalization refers to the increasing interdependence of world economies as a result of the growing scale of cross&border trade] investment] and finance-"

अर्थात् आर्थिक वैश्वीकरण केवल आर्थिक गतिविधियों का वैश्विक विस्तार ही नहीं है, बल्कि यह उन तंत्रों और संस्थाओं का भी विकास है जो इन गतिविधियों को नियंत्रित और प्रभावित करती हैं।

आर्थिक वैश्वीकरण का ऐतिहासिक विकास– वैश्वीकरण का इतिहास सदियों पुराना है, लेकिन आधुनिक आर्थिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विशेष रूप से तीव्र हुई। इसका विकास निम्नलिखित चरणों में देखा जा सकता है–

पूर्व–आधुनिक वैश्वीकरण (Pre&modern Globalization)– प्राचीन काल में रेशम मार्ग (Silk Route), मसाला व्यापार, और समुद्री व्यापारिक मार्ग वैश्वीकरण के प्राथमिक रूप थे। इनका प्रभाव सीमित था और यह राजाओं/साम्राज्यों द्वारा नियंत्रित थे।

उपनिवेशवाद और प्रारंभिक पूंजीवाद (1500–1945)– यूरोपीय शक्तियों ने उपनिवेशों की स्थापना के माध्यम से वैश्विक व्यापार का विस्तार किया। इस काल में व्यापार, संसाधनों की लूट और श्रम–शोषण के माध्यम से एकतरफा आर्थिक लाभ उठाया गया।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 02, February 2025

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का काल (Post&World War II)– अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना जैसे कि IMF (1944), विश्व बैंक (1944), और GATT (1947) (बाद में WTO)। ब्रेटन वुड्स प्रणाली ने वैश्विक आर्थिक सहयोग की नींव रखी।

नवउदारवाद और उदारीकरण (1980 के बाद)– रेगन और थैचर युग में 'न्यूनतम राज्य और अधिक बाज़ार' की अवधारणा को बढ़ावा मिला। कई देशों में आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और वैश्विक बाज़ार के लिए द्वार खोलने की नीति अपनाई गई। भारत में 1991 की आर्थिक सुधार नीति इसी का उदाहरण है।

डिजिटल और तकनीकी वैश्वीकरण (21वीं सदी)– इंटरनेट, ई–कॉमर्स, डिजिटल भुगतान प्रणाली, क्रिप्टोकरेंसी और डेटा–आधारित अर्थव्यवस्था ने आर्थिक वैश्वीकरण को नए स्तर पर पहुँचाया है। अब न केवल वस्तुओं और पूंजी का, बल्कि जानकारी और विचारों का वैश्वीकरण भी हो रहा है।

आर्थिक वैश्वीकरण की प्रमुख विशेषताएँ– आर्थिक वैश्वीकरण केवल एक आर्थिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह राजनीतिक, सामाजिक और तकनीकी परिवर्तनों से गहराई से जुड़ा हुआ है। स्वतंत्र व्यापार और खुली अर्थव्यवस्थाएँ, निजीकरण और उदारीकरण की नीति, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का विस्तार, प्रौद्योगिकीय नवाचार और वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय बाजारों की एकता, नीति निर्माण में वैश्विक संस्थाओं की भूमिका आदि विशेषताएं।

राज्य की संप्रभुता का पारंपरिक दृष्टिकोण– संप्रभुता का अर्थ है किसी राज्य की पूर्ण, सर्वोच्च और स्वतंत्र शक्ति, जिसके तहत वह अपने क्षेत्र में शासन, कानून निर्माण और नीति निर्धारण करता है, तथा बाह्य हस्तक्षेप से मुक्त होता है। यह अवधारणा राज्य की राजनीतिक और कानूनी आत्मनिर्भरता की मूलभूत नींव मानी जाती है।

आंतरिक संप्रभुता (Internal Sovereignty) राज्य की वह शक्ति है जिसके अंतर्गत वह अपने नागरिकों, संस्थाओं, और क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर नीतियाँ, कानून और प्रशासन तय करता है। वहीं बाह्य संप्रभुता किसी राज्य की यह स्वतंत्रता है कि वह किसी बाहरी शक्ति के हस्तक्षेप के बिना अंतर्राष्ट्रीय निर्णय ले सकता है, जैसे युद्ध, संधियाँ, राजनयिक संबंध आदि। विधायी संप्रभुता संसद या विधायिका की वह सर्वोच्च शक्ति है जो नीतियाँ और कानून बनाने में सर्वोपरि हो। लोकतांत्रिक संप्रभुता – यह विचार कि संप्रभुता का स्रोत जनता है और राज्य का अस्तित्व व अधिकार जनता की इच्छा से निर्मित होता है। पारंपरिक राजनीतिक सिद्धांत में, राज्य को संप्रभु माना जाता था, एक ऐसी सत्ता जो न केवल अपने क्षेत्र में सर्वोच्च होती है, बल्कि बाहरी नियंत्रणों से भी पूर्णतः मुक्त रहती है। यह अवधारणा विशेष रूप से पश्चिमी राज्य प्रणाली के उद्भव के समय विकसित हुई, जब राष्ट्र–राज्य की अवधारणा सशक्त हो रही थी। थॉमस हॉब्स ने अपनी पुस्तक Leviathan (1651) में राज्य को एक ऐसी कृत्रिम सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया जो समाज में शांति और अनुशासन बनाए रखने हेतु आवश्यक है। उसके अनुसार, संप्रभुता का स्थान सर्वोच्च शासक में निहित होना चाहिए।

हालाँकि पारंपरिक दृष्टिकोण राज्य को पूर्ण संप्रभु मानता है, लेकिन आधुनिक युग में संप्रभुता का यह स्वरूप बदलने लगा है। वैश्विक परस्पर निर्भरता, अंतरराष्ट्रीय कानून, मानवाधिकार, जलवायु परिवर्तन और अब आर्थिक वैश्वीकरण सभी ने राज्य की संप्रभुता को एक सापेक्ष अवधारणा बना दिया है। राज्य अब पूरी तरह स्वतंत्र नहीं रह गए हैं, बल्कि वे विभिन्न वैश्विक संस्थाओं, समझौतों और आर्थिक–राजनीतिक

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 02, February 2025

ताकतों के अधीन कुछ हद तक नीति–निर्माण में सीमित हो गए हैं। संप्रभुता अब एक निरपेक्ष अवधारणा के बजाय गत्यात्मक और लचीली बन चुकी है।

आर्थिक वैश्वीकरण और राज्य की संप्रभुता दोनों परस्पर विरोधाभासी शक्तियों के रूप में देखे जा सकते हैं। एक ओर जहाँ आर्थिक वैश्वीकरण सीमाओं के परे पूंजी, व्यापार और निवेश के स्वतंत्र प्रवाह को बढ़ावा देता है, वहीं राज्य की संप्रभुता सीमाओं के भीतर नियंत्रण और निर्णय की शक्ति पर आधारित होती है। यह खंड इसी द्वंद्वात्मक संबंध का विश्लेषण करता है। आर्थिक वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप अनेक सरकारें अब स्वतंत्र रूप से नीतियाँ बनाने में सक्षम नहीं रह गई हैं। विशेष रूप से निम्न क्षेत्रों में संप्रभुता प्रभावित हुई है–

वित्तीय नीति– IMF और विश्व बैंक जैसे संस्थानों की शर्तों के तहत ऋण लेने वाले देश अपनी ब्याज दरों, सब्सिडी और सामाजिक कल्याण योजनाओं पर स्वतंत्र रूप से निर्णय नहीं ले पाते।

वाणिज्य नीति - WTO के नियमों के अनुसार देशों को आयात शुल्क, निर्यात प्रोत्साहन, और ट्रेड बैरियर्स को सीमित करना पड़ता है, जिससे उनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता घटती है।

मूल्य निर्धारण और सार्वजनिक क्षेत्र– वैश्विक प्रतिस्पर्धा के दबाव में सरकारें कई सार्वजनिक उपक्रमों का निजीकरण करती हैं, जिससे राज्य की प्रत्यक्ष आर्थिक भूमिका सीमित हो जाती है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों (MNCS) का प्रभाव– बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ आज केवल व्यापारिक इकाइयाँ नहीं, बल्कि नीतिगत प्रभावशाली इकाइयाँ बन गई हैं। इन कंपनियों का सरकारों पर प्रभाव कई रूपों में देखा जाता है जैसे नीतिगत रियायतों के बदले निवेश, प्राकृतिक संसाधनों तक विशेष पहुँच, पर्यावरणीय और श्रम कानूनों में ढील की माँग, तिस्पर्धी कर दरों के लिए दबाव, इससे राज्य की नीति–निर्माण की स्वतंत्रता बाधित होती है।

आर्थिक वैश्वीकरण के युग में, राज्य कभी–कभी स्वेच्छा से अपनी संप्रभुता को अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं को हस्तांतरित करता है, ताकि वह वैश्विक बाज़ार में टिक सके। यूरोपीय संघ के सदस्य देशों ने अपनी मौद्रिक नीति की संप्रभुता यूरोपीय सेंट्रल बैंक को सौंप दी है। भारत में FDI सुधार यानी अंतर्राष्ट्रीय निवेश आकर्षित करने हेतु भारत ने खुदरा, रक्षा और बीमा क्षेत्र में विदेशी निवेश की सीमाओं को बढ़ाया, जिससे पारंपरिक नीति–निर्धारण पर प्रभाव पड़ा। आर्थिक वैश्वीकरण केवल आर्थिक नीतियों तक सीमित नहीं है; यह उपभोक्तावाद, जीवनशैली, और संस्कृति को भी प्रभावित करता है। इससे स्थानीय परंपराएँ, भाषाएँ, और मूल्य–व्यवस्थाएँ वैश्विक पूंजी की दिशा में ढलने लगती हैं, जिससे सांस्कृतिक संप्रभुता भी क्षीण होती है।

क्या संप्रभुता समाप्त हो रही है? यह कहना अतिशयोक्ति होगा कि आर्थिक वैश्वीकरण ने राज्य की संप्रभुता को पूर्णतः समाप्त कर दिया है। बल्कि, संप्रभुता का स्वरूप बदल रहा है अब यह सहभागिता आधारित (participatory) और सापेक्ष (relative) हो गया है। राज्य अब वैश्विक व्यवस्था के साथ संतुलन बनाते हुए अपनी संप्रभुता को नई परिभाषा दे रहे हैं।

भारत में आर्थिक वैश्वीकरण और संप्रभुता पर प्रभाव– भारत ने 1991 में अपने आर्थिक ढांचे में व्यापक सुधारों की शुरुआत की, जिसे आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (LPG reforms) के रूप में जाना जाता है। यह परिवर्तन भारत को वैश्विक अर्थव्यवस्था से जोड़ने हेतु किया गया था। इन नीतियों ने

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 02, February 2025

देश के आर्थिक विकास को गति दी, लेकिन साथ ही राज्य की संप्रभुता पर भी गहरे प्रभाव डाले। भारत को जब 1991 में गंभीर विदेशी मुद्रा संकट का सामना करना पड़ा, तब IMF और विश्व बैंक से ऋण लेने के लिए उसे कई आर्थिक शर्तें माननी पड़ीं। इनमें शामिल थे सब्सिडी में कटौती, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का निजीकरण, व्यापार में उदारीकरण, विदेशी निवेश की अनुमति आदि। इन निर्णयों में स्वतंत्र नीति निर्माण की सीमा IMF और विश्व बैंक की शर्तों से निर्धारित होने लगी, जिससे राज्य की आंतरिक आर्थिक संप्रभुता प्रभावित हुई। भारत में FDI (Foreign Direct Investment) को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार को लगातार कर छूट, विशेष आर्थिक क्षेत्र, श्रम और पर्यावरण कानूनों में ढील, भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया को तेज करना पड़ा है। इन नीतियों से स्पष्ट होता है कि सरकारें कभी–कभी राष्ट्रीय हितों की बजाय अंतरराष्ट्रीय निवेशकों को प्राथमिकता देती हैं, जिससे आंतरिक नीति–निर्माण में बाहरी दबाव स्पष्ट होता है।

भारत में बड़ी संख्या में MNCs जैसे Amazon, Walmart, Facebook, Google आदि कार्यरत हैं। इनके ई–कॉमर्स नीतियों में संशोधन, डेटा लोकलाइजेशन, विदेशी स्वामित्व, लोकल व्यवसायों पर दबाव, विज्ञापन और मीडिया में प्रत्यक्ष/परोक्ष नियंत्रण, प्रभाव देखने को मिलते हैं। इन परिस्थितियों में राज्य की नियंत्रण की भूमिका कमजोर होती जाती है। भारत की कृषि नीति भी वैश्वीकरण से अछूती नहीं रही है, MSP (Minimum Support Price) जैसे कार्यक्रमों को "बाजार विकृति" के रूप में प्रस्तुत किया जाना। 2020 के कृषि कानून जो कथित तौर पर वैश्वीकरण समर्थक थे, पर देशव्यापी विरोध से यह स्पष्ट हुआ कि वैश्वीकरण और जनहित में संतुलन आवश्यक है।

डिजिटल वैश्वीकरण और डेटा संप्रभुता आज भारत के सामने डेटा संप्रभुता एक नई चुनौती बनकर उभरी है, विदेशी कंपनियाँ भारत के नागरिकों का डेटा विदेशों में स्टोर करती हैं, इससे न केवल निजता का संकट है, बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा और प्रौद्योगिकीय आत्मनिर्भरता पर भी प्रश्नचिह्न लगता है। भारत सरकार द्वारा डेटा संरक्षण कानून बनाना इसी दिशा में एक प्रयास है। भारत में वैश्वीकरण ने कई आर्थिक अवसर प्रदान किए, लेकिन साथ ही संप्रभुता को चुनौती भी दी। सरकारें अब नव–संप्रभुता की अवधारणा की ओर बढ़ रही हैं, जिसमें वैश्विक सहभागिता और राष्ट्रीय हितों में संतुलन बैठाना प्रमुख लक्ष्य है।

वैश्वीकरण और संप्रभुता के बीच का संबंध जटिल और बहुस्तरीय है। जहाँ एक ओर वैश्वीकरण अंतरराष्ट्रीय सहयोग, आर्थिक विकास और सांस्कृतिक आदान–प्रदान को बढ़ावा देता है, वहीं दूसरी ओर यह राज्य की नीतिगत स्वतंत्रता, स्वशासन और सांस्कृतिक पहचान पर प्रभाव डालता है। यह खंड दोनों पक्षों के तर्कों का सम्यक विश्लेषण करता है। वैश्वीकरण के पक्षधर इसे अवसरों और प्रगति का युग मानते हैं। उनके प्रमुख तर्क निम्नलिखित हैं, वैश्वीकरण से विदेशी पूंजी का प्रवाह बढ़ता है, जिससे बुनियादी ढांचा, रोजगार और नवाचार को बढ़ावा मिलता है। उदाहरण– भारत में आईटी और सेवा क्षेत्र का तेजी से विकास हुआ है। वैश्वीकरण से देश अंतरराष्ट्रीय व्यापार प्रणाली का हिस्सा बनते हैं, जिससे उत्पादों का निर्यात और आर्थिक प्रतिस्पर्धा में भागीदारी बढ़ती है।

वैश्विक संपर्क से तकनीकी नवाचार, शोध एवं शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग की संभावनाएँ खुलती हैं। अंतर्राष्ट्रीय समस्याएँ (जैसे– जलवायु परिवर्तन, महामारी) वैश्विक सहयोग से ही हल हो सकती हैं। इसके लिए वैश्विक संस्थाएँ आवश्यक हैं। संप्रभुता के पक्षधर वैश्वीकरण को एक आर्थिक औपनिवेशिकता के नए रूप के रूप में देखते हैं। उनके मुख्य तर्क हैं– वैश्विक संस्थाओं और MNCs के दबाव में सरकारें अपने

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 02, February 2025

संविधानसम्मत और लोकतांत्रिक निर्णयों को सीमित करती हैं। वैश्वीकरण के लाभ असमान रूप से बँटे हैं बड़े पूंजीपतियों और शहरी क्षेत्रों को लाभ मिला जबकि ग्रामीण/सीमांत वर्ग उपेक्षित रह गया। पश्चिमी उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव से स्थानीय भाषाएँ, मूल्य और परंपराएँ संकट में हैं। IMF, WTO जैसी संस्थाओं में निर्णय–प्रक्रिया कुछ शक्तिशाली देशों के नियंत्रण में है। इससे विकासशील देशों की आवाज़ दब जाती है। इस बहस से यह स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण पूर्णतः नकारात्मक या सकारात्मक नहीं है; इसका प्रभाव संदर्भ और कार्यान्वयन पर निर्भर करता है। आज की ज़रूरत है एक संतुलित मॉडल की, जिसमें वैश्विक भागीदारी को अपनाया जाए, लेकिन नीतिगत संप्रभुता और सांस्कृतिक विविधता की रक्षा की जाए।

संप्रभुता की पुनर्रचना, वैश्वीकरण के युग में राज्य की नई भूमिका– वैश्वीकरण ने संप्रभुता की पारंपरिक परिभाषा को क्यों चुनौती दी? संप्रभुता परंपरागत रूप से इस विचार पर आधारित रही है कि राज्य अपनी सीमाओं के भीतर पूर्ण नियंत्रण रखता है, किसी बाहरी शक्ति के हस्तक्षेप से मुक्त होता है, और स्वतंत्र रूप से कानून, नीति और शासन का निर्धारण करता है। लेकिन आर्थिक वैश्वीकरण ने इस परिभाषा को तीन मोर्चों पर चुनौती दी है। वित्तीय मोर्चा अर्थात अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों (IMF, World Bank) की शर्तें और विदेशी निवेशकों की मांगों ने राष्ट्रीय बजट और सब्सिडी नीति तक को प्रभावित किया है। नियामकीय मोर्चा अर्थात WTO, TRIPS, और अन्य समझौते अब देशों के व्यापार और बौद्धिक संपदा नीति को प्रभावित करते हैं। डिजिटल और साइबर स्पेस अर्थात डेटा का वैश्विक प्रवाह, क्रिप्टोकरेंसी, और बिग टेक कंपनियाँ राज्य के डिजिटल संप्रभुता को चुनौती दे रही हैं।

नव–संप्रभुता अर्थात संप्रभुता का 21वीं सदी का संस्करण– नव–संप्रभुता का अर्थ है राज्य वैश्विक व्यवस्था में भागीदार रहते हुए अपनी प्राथमिकताओं, सुरक्षा और संस्कृति की रक्षा करना सीख रहा है। जिसकी मुख्य विशेषताएँ सहभागिता आधारित संप्रभुता (Participatory Sovereignty) अर्थात राज्य अब वैश्विक संस्थाओं का हिस्सा बनते हुए भी उनमें अपनी आवाज़ मज़बूत करने की दिशा में काम करता है। जैसे भारत का WTO में खाद्य सुरक्षा को लेकर Peace Clause की वकालत। क्षेत्रीय रणनीति (Regional Sovereignty) के अर्न्तगत राज्य अब अपने पड़ोसी देशों या क्षेत्रीय समूहों के साथ समझौते कर अपनी संप्रभुता को सामूहिक रूप से मज़बूत कर रहे हैं। जैसे ASEAN, BIMSTEC में भारत की सक्रिय भूमिका। डिजिटल संप्रभुता (Digital Sovereignty) अर्थात डेटा सुरक्षा कानूनों, लोकल डेटा स्टोरेज नीति, और डिजिटल रूप से आत्मनिर्भर बनने की प्रवृत्ति ये सभी डिजिटल संप्रभुता की दिशा में कदम हैं। जैसे भारत का डिजिटल निजता विधेयक 2023। सांस्कृतिक संप्रभुता का पुनर्निर्माण यानी भारत, चीन, और कई अफ्रीकी देश अब अपने सांस्कृतिक मूल्यों को ग्लोबल नैरेटिव में प्रस्तुत कर रहे हैं। जैसे योग, आयुर्वेद, मिलेट्स को वैश्विक मंचों पर बढ़ावा देना।

वैश्वीकरण के युग में राज्य की नई जिम्मेदारियाँ–

1. नीति–निर्माता के रूप में राज्य का पुनर्निर्माण हो रहा है, राज्य को स्पष्ट नीति बनानी होगी कि कहाँ विदेशी निवेश को अनुमति दी जाए और कहाँ नहीं। जैसे रक्षा, दूरसंचार, डेटा इन क्षेत्रों में रणनीतिक रोक

2. जन–संवाद एवं सामाजिक वैधता, अर्थात राज्य को वैश्वीकरण से जुड़ी नीतियों के लिए लोक समर्थन जुटाना होगा। जैसे कृषि कानूनों के विरोध से स्पष्ट हुआ कि बिना संवाद के लाए गए वैश्वीकरण समर्थक कानून अस्वीकार्य हो सकते हैं।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 02, February 2025

3. बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए सख़्त नियमन अर्थात नियम और कानून बनाकर यह सुनिश्चित करना कि कोई MNC न केवल कर भुगतान करे, बल्कि स्थानीय विकास में भी योगदान दे।

4. स्वदेशीकरण और आत्मनिर्भरता का प्रोत्साहन अर्थात आत्मनिर्भर भारत जैसी योजनाएँ अब केवल आर्थिक पहल नहीं, बल्कि संप्रभुता सुदृढ़ीकरण का प्रयास बन चुकी हैं।

अब यह स्पष्ट हो रहा है कि सार्वभौमिक संप्रभुता अब भी राज्य की पहचान का केंद्र बिंदु है, लेकिन इसकी प्रकृति और अभिव्यक्ति बदल गई है। यह अब अधिक लचीली, प्रतिक्रियाशील और सामूहिक भागीदारी पर आधारित हो गई है। विश्व नव–संप्रभुता की ओर अग्रसर है भविष्य में जो राज्य अपने संप्रभु हितों की रक्षा करते हुए वैश्विक चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करेगा, वही प्रभावशाली होगा। इस शोध में हमने यह पाया कि आर्थिक वैश्वीकरण ने न केवल आर्थिक परिदृश्य को, बल्कि राज्य की पारंपरिक संप्रभुता को भी बुनियादी रूप से प्रभावित किया है। यह प्रभाव दोहरी प्रकृति का है, एक ओर यह आर्थिक अवसर, तकनीकी नवाचार, और अंतरराष्ट्रीय सहयोग की संभावनाएँ खोलता है, वहीं दूसरी ओर यह राज्य की नीतिगत स्वतंत्रता, सांस्कृतिक पहचान और आत्मनिर्णय की क्षमता को चुनौती देता है।

अंततोगत्वा वैश्वीकरण की इस जटिल संरचना में अब यह आवश्यक हो गया है कि राज्य अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा करे, वैश्विक अवसरों का समुचित लाभ उठाए, और एक संतुलित रणनीति के साथ आगे बढ़े। भारत जैसे विकासशील लोकतांत्रिक देशों के लिए यह और भी अधिक महत्वपूर्ण है, जहाँ राज्य को आर्थिक विकास और सामाजिक समरसता दोनों में संतुलन बैठाना होता है।

इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ कि संप्रभुता अब एक स्थिर अवधारणा नहीं रही, यह गतिशील, संदर्भ–आधारित और नवाचार–उन्मुख बन चुकी है। राज्य अब नियंत्रणकारी इकाई नहीं, बल्कि एक प्रबंधनकारी और साझेदार इकाई के रूप में उभर रहा है।

अनुशंसाएं–

1. रणनीतिक वैश्वीकरण नीति निर्माण हो प्रत्येक क्षेत्र (जैसे कृषि, स्वास्थ्य, रक्षा, डिजिटल) के लिए अलग वैश्वीकरण रणनीति होनी चाहिए। नीति निर्धारण में स्थानीय हितधारकों की भागीदारी सुनिश्चित की जाए।

2. डेटा और साइबर संप्रभुता की सुरक्षा हो– डेटा लोकलाइजेशन और डिजिटल अधिकारों की रक्षा के लिए सख्त कानून बनाए जाए। अंतरराष्ट्रीय डिजिटल मंचों (जैसे G20 Digital Economy Group) में सक्रिय भागीदारी हो।

3- WTO, IMF जैसी वैश्विक संस्थाओं में न्यायपूर्ण भागीदारी की माँग हो– विकासशील देशों के हितों की रक्षा के लिए गठबंधन बनाना (जैसे G77, BRICS) और वैश्विक नियमों में सुधार की पहल करना।

4. सांस्कृतिक और भाषायी संप्रभुता की रक्षा हो– स्थानीय भाषाओं और सांस्कृतिक मूल्यों को शिक्षा, मीडिया और वैश्विक मंचों पर बढ़ावा देना। 'सांस्कृतिक राजनय' को विदेश नीति का हिस्सा बनाना।

5. बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए नियामक ढाँचे का सशक्तिकरण हो – CSR (Corporate Social Responsibility) को अनिवार्य एवं प्रभावी बनाना। कर चोरी, डेटा दुरुपयोग और अनुचित प्रतिस्पर्धा पर सख्त दंड लागू करना।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 02, February 2025

6. स्वदेशीकरण और आत्मनिर्भरता का सुदृढ़ीकरण– 'मेक इन इंडिया', 'स्टार्टअप इंडिया' और 'डिजिटल इंडिया' जैसे अभियानों को ज़मीनी स्तर तक पहुँचाना। वैश्विक प्रतिस्पर्धा में टिके रहने के लिए कौशल विकास और अनुसंधान में निवेश।

7. बहुस्तरीय नीति संवाद की स्थापना– वैश्वीकरण से जुड़े मुद्दों पर जनसुनवाई, शोध–नीति संवाद, और संसदीय समिति रिपोर्टिंग को बढ़ावा देना।

21वीं सदी का राष्ट्र अब अलग–थलग रहने वाला नहीं रह सकता। लेकिन उसका यह वैश्विक संवाद तब ही सार्थक होगा जब वह आत्मनिर्भर, सांस्कृतिक रूप से सजग और नीति–निर्माण में सक्षम हो।

अतः वैश्वीकरण और संप्रभुता का संघर्ष अब सह–अस्तित्व और पुनर्परिभाषा की ओर बढ़ रहा है। भारत जैसे राष्ट्रों के लिए यही समय है, अपने मूल्य, नीति और उद्देश्य को वैश्विक संदर्भ में फिर से स्थापित करने का।

सन्दर्भ सूची–

1– अन्तरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र (International Economics) के. डी. स्वामी, साइंटिफिक पब्लिशर्स, 2018, ISBN: 9789387307148

2– अन्तरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र, डॉ. अशोक सोनी, डॉ. ओम प्रकाश सुखवाल, डॉ. मनीष कुमार रावल, हिमांशु पब्लिकेशन्स 2017, ISBN: 9788179065921

3- 25 Years of Globalisation and Indian Economy, आर. के. मित्तल, ब्लूम्सबरी इंडिया, 2017, ISBN: 9789386432971

4- Globalization and the Politics of Identity in India, भूपिंदर ब्रार, अशुतोष कुमार, रोंकी राम, पियरसन इंडिया, 2007, ISBN: 9788131785256

5- Indian Economy and Neoliberal Globalization: Finance] Trade] Industry and Employment, संपादक पी. एल. बीना, मुरली कल्लुमल, संतोष कुमार, रूटलेज इंडिया, 2023, ISBN: 9781032347134

6- Globalization and India's Economic Integration, बलदेव राज नायर, जॉर्जटाउन यूनिवर्सिटी प्रेस वर्ष 2014, ISBN: 9781626161078

7- India Unbound: From Independence to Global Information Age, गुर्चरण दास, पेंगुइन बुक्स इंडिया, वर्ष 2000, ISBN: 9780143063018

8–भारत में वैश्वीकरण के प्रभाव, डॉ. कविता शर्मा, ज्ञान गंगा पब्लिकेशन वर्ष 2021, ISBN: 9789381423456
वैश्वीकरण और भारतीय समाज, डॉ. सुषमा त्रिपाठी, साहित्य भवन 2014, ISBN: 9788175003456